Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 9 | SEPTEMBER 2023

समकालीन हिन्दी कविता में राजनीतिक व्यंग्य

डॉ. सुरेन्द्र शर्मा [1]

[1] सहायक आचार्य (हिन्दी), चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

ABSTRACT:

भारतीय समाज जीवन में राजनीति का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। राष्ट्र द्वारा स्वतंत्रता पश्चात अंगीकार की गई शासन व्यवस्था का आधार राजनीति ही है। स्वतंत्रता के कुछ ही समय बाद प्रकट राजनीति की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं ने न केवल जनसाधारण अपितु समकालीन कविवर्ग को भी गहरे तक आहत किया है। राजनीतिक यंत्रणाओं में पिसते आम आदमी का दु:ख-दर्द समकालीन कविता में खुलकर व्यक्त हुआ है। यहाँ राजनीतिक विडम्बनाओं के उद्घाटन हेतु व्यंग्य एक सशक्त माध्यम रहा है। समकालीन कवि ने व्यंग्य रूप में राजनीति के सभी अंग-उपांगो पर गहन प्रहार किए हैं। यद्यपि इस कविता में राजनीति के नकारात्मक रूप पर व्यंग्य प्रहार ही अधिक हैं, किन्तु कहीं-कहीं इसके सकारात्मक रूप का भी सुन्दर चित्रण हुआ है।

KEYWORDS:

समकालीन कविता, व्यंग्य, राजनीति, लोकतंत्र, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, आम आदमी, अवसरवाद, अपराध।

समकालीन हिन्दी कविता की विविध प्रवृत्तियों में व्यंग्य उसकी अति विशिष्ट प्रवृत्ति है। यद्यपि व्यंग्य एवं साहित्य का सदा से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, किन्तु सन 1960 के पश्चात की हिन्दी कविता में व्यंग्य अत्यंत पैना होकर उभरा है। यहाँ व्यंग्य का मुख्य उपजीव्य स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति है। स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्र द्वारा अंगीकार की गई लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली ने जनता के साथ-साथ कवि वर्ग के मन में भी आशा का संचार किया। उसमें देश के विकास का भव्य स्वप्न देखा गया। किन्तु सन साठ तक आते-आते यह स्वप्न दिवास्वप्न सिद्ध होता प्रतीत हुआ। सन साठ तक दो आम चुनाव देख लेने वाली जनता का जल्द ही आजादी और जनतंत्र की व्यवस्था से मोहभंग होने लगा। सन साठ के पश्चात की राजनीतिक अव्यवस्था, संसद व विधानसभाओं की उपद्रवपूर्ण स्थिति, राजनीति की सिद्धांतहीनता, नेताओं की चरित्रहीनता, दल-बदल, जनकल्याण के प्रति उदासीनता, पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापक व्यय के पश्चात भी अति निर्धनता, महँगाई, बेरोजगारी, अशिक्षा, सन 1975 का आपात्काल, सन 1984 की भोपाल गैस त्रासदी तथा नक्सलवाद जैसी आंतरिक समस्याओं के साथ-साथ सन 1962 का चीनी आक्रमण, सन 1965 व 1971 में पाकिस्तान से युद्ध, सन 1999 में कारगिल पर पाकिस्तानी आक्रमण तथा आतंकवाद जैसी बाहरी समस्याओं ने आम आदमी के साथ-साथ संवेदनशील समकालीन कवि को भी बुरी तरह से झकझोर कर रख दिया। इन सब परिस्थितियों के प्रति समकालीन कवि की पीड़ा स्थान-स्थान पर व्यंग्य के माध्यम से प्रकट हुई है। समकालीन हिन्दी कवि ने चिर तन्द्रा के पश्चात उत्पन्न स्वप्न भंग की स्थिति का कारुणिक चित्रण किया है–"सपने देखने वाली आँख/ अँधी हो गई है/ हमें एक संग्रहालय खोलना चाहिए/ – सन अमुक से अमुक तक/ सपनीली आँखें/ ऐसी होती थी।"1 यहाँ कवि की आक्रोशमय व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति को सहज ही अनुभूत किया जा सकता है।

समकालीन हिन्दी कविता में राजनीति का नकारात्मक रूप सर्वप्रमुख रूप से व्यंग्य का केन्द्र रहा है। भारतीय राजनीति के आधार स्तम्भ गाँधीजी के राजनीतिक आदर्शों को भुलाकर राजनीति में निरन्तर सिद्धांतहीनता तथा मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न होती चली गई। नेताओं द्वारा स्वार्थपूर्ति हेतु जिस प्रकार गाँधी जी के नाम का उपयोग किया गया, उस पर करारा व्यंग्य समकालीन कविता में मिलता है–"मैं जानता हूँ/ क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का/ उत्सवों में अधिकारियों के/ बिल्ले बनाने के काम आ गई/ भीड़ से बचकर/ एक सम्मानित विशेष द्वारा से/ आखिर वे उसी के सहारे तो जा सकते थे/ और तुम्हारी लाठी/ उसी को टेक कर चल रही है/ एक बिगड़ दिमाग डगमगाती सत्ता।"2 गाँधीजी के महान सिद्धांतों की दयनीय स्थिति कवि विष्णुचन्द्र शर्मा की निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है–"खुली सड़क पर कत्ल करने वाले/ विजयी सिद्धांतों की पताका फैला रहे हैं/ हमारी स्वाधीनता के वीर सिपाही/ शराब और गाँजे के परमिट बेच रहे हैं/ हैदराबाद के म्यूजियम में एक घड़ी है/ जिसमें से गाँधी/ हर घंटे पर दरवाजा खोलकर बाहर आते हैं/ और लौट जाते हैं।/ स्वामी दयानंद का सत्यार्थ प्रकाश/ और तिलक का गीता रहस्य/ बनियों ने खरीद लिया है।"3 यहाँ राष्ट्र की उस विडम्बनापूर्ण स्थिति पर मार्मिक व्यंग्य है, जिसमें स्वाधीनता के सिपाही अब अपने सिद्धांतों से पलट कर शराब और गाँजे के परमिट बेचने में व्यस्त हैं। ऐसी स्थिति में गाँधी जी के पास आकर लौट जाने के अलावा और विकल्प भी क्या शेष है।

समकालीन हिन्दी कविता में राजनीति के महत्त्वपूर्ण अंग चुनाव, वोट, प्रचार, घोषणा, मतदान, जनतंत्र आदि पर तीखा व्यंग्य मिलता है। चुनाव के समय योग्यता, निष्ठा व ईमानदारी किस प्रकार ताक पर रखकर जाति, धर्म और सांप्रदायिकता के आधार पर वोट माँगे जाते हैं। इसका सटीक व्यंगात्मक चित्रण समकालीन कविता में मिलता है–"तालियों की गड़गड़ाहट के बीच/ नेताजी ने एक हजार एक का/ थैला लिया, फिर/ लम्बा चौड़ा भाषण दिया/ और अन्त में बोले...../ इस समय मैं मंत्री नहीं/ वोट का भिखारी हूँ/ जनता का सेवक/ शान्ति का पुजारी हूँ/ दाँत निपोरते हुए/ ही.....ही.....ही/ सिर्फ एक बात याद रहे (ध्यान रहे)/ यह ब्राह्मणों का इलाका है/ और मैं तिवारी हूँ।"4 यद्यपि एक ओर राजनीतिज्ञों द्वारा जातिवाद नहीं करने व जाति के आधार पर कोई भी कार्य नहीं करने का आह्वान किया जाता है किन्तु दूसरी ओर जाति के आधार पर दल बनाए जाते हैं, टिकट बाँटे जाते हैं, चुनाव लड़े जाते हैं और इसी आधार पर वोट भी माँगे जाते हैं। आम चुनाव के समय जातिवाद की विडम्बना को व्यक्त करने वाली कवि राजकमल चौधरी की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–"रंग में अल्कोहल भाषा में केवल बीते हुए गलित व्रण केवल चित्कार/ आम चुनाव में किस जाति को करना होगा मतदान।"5

स्वाधीनता के पश्चात भारत में शासन व्यवस्था के संचालन लिए जनतंत्रीय व्यवस्था को अपनाया गया। 'जनता द्वारा जनता के लिए जनता का शासन' के सिद्धांत पर चलने वाली इस व्यवस्था का उद्देश्य अत्यंत व्यापक है, किन्तु भारत में इस व्यवस्था की खामियों को देखकर समकालीन कविता ने अपना दायित्व निर्वहन करते हुए इस पर तीक्ष्ण प्रहार किए हैं। समकालीन कवि धूमिल जनतंत्र पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं–"यहाँ ऐसा जनतंत्र है जिसमें/ जिंदा रहने के लिए/ घोड़े और घास को/ एक जैसी छूट है/ कैसी विडम्बना है/ कैसा झूठ है/ दरअसल अपने यहाँ जनतंत्र/ एक ऐसा तमाशा है/ जिसकी जान/ मदारी की भाषा है।"6 जनतंत्रीय व्यवस्था अपने मूल उद्देश्य से भटककर कुछ लोगों के हाथों का खेल बनकर रह गई और सीधी-सादी आम जनता को भ्रमित करने का माध्यम बनती हुई दिखाई देने लगी। इस स्थिति पर व्यंग्य करता हुआ समकालीन कवि कहता है–"मैंने देखा कि इस जनतांत्रिक जंगल में/ हर तरफ हत्याओं के नीचे से निकलते हैं/ हरे-हरे हाथ और पेड़ों पर/ पत्तों की जबान बनकर लटक जाते हैं/ वे ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे सुनकर/ नागरिकता की गोधूलि में/ घर लौटते हुए मुसाफिर/ अपना रास्ता भटक जाते हैं।"7

लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का एक विचित्र पक्ष यह भी है कि कोई अशिक्षित व्यक्ति भी सत्ता के उच्चतम पद तक पहुँच सकता है। देश की जनता पर अनपढ़ लोगों द्वारा शासन करने की स्थिति पर व्यंग्य करते हुए समकालीन कवि कहता है–"एक नेताजी/ बड़ी तैयारी के बाद/ एटामिक प्लांट पर बोल रहे थे/ जनता के कान में/ ज्ञान का रस घोल रहे थे/ कह रहे थे

एटामिक प्लांट/ कुदरत का नया सुरूर है/ जी भर कर खाइए, विटामिन से भरपूर है।"8

समकालीन राजनीति से सेवा, सत्य, त्याग, सहिष्णुता, सिद्धांतप्रियता व देशप्रेम जैसे शब्द लुप्त होते जाने की स्थिति ने कवि वर्ग को गहरे तक आहत किया है। राजनीति का उद्देश्य अब केवल स्वार्थपूर्ति रह गया है। येन केन प्रकारेण सत्ता प्राप्त करना और निरन्तर सुख सुविधाओं का उपभोग करना ही मानो राजनीति का ध्येय बन गया है। इस स्थिति पर व्यंग्य करता हुआ समकालीन कवि कहता है–"भारत एक वर्ष है/ और स्वतंत्र एक दल है/ सेवक कार पर और जन पैदल है।"9

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति में दल-बदल की प्रवृत्ति भी हावी रही है। आयाराम गयाराम की संस्कृति ने राजनीतिक शुचिता को गहरे तक आघात पहुँचाया है। राजनीतिज्ञों के घटियापन व दल-बदल संस्कृति पर व्यंग्य करते हुए समकालीन कवि कहता है–"कहीं कुछ नहीं होता/ लाल टोपी पहन कर गया हुआ विधायक सफेद टोपी पहनकर/ लौट आता है। और सफेदवाला– काली। बस। इसके अतिरिक्त/ कुछ भी तो नहीं बदलता। न स्वागत समारोह/ न सभाएँ, न भाषण, न आश्वासन/ सिर्फ किसी का काला धन सफेद हो जाता है। और/ किसी का थूका हुआ खून–पानी/ पानी बरसता है फाइलों में और सूखी सड़कें और पुल/ देखते-देखते बह जाते हैं। कुर्सियाँ? और भी गहरे जम जाती हैं।"10

चरित्र का दोहरापन राजनीति की कटु सत्यता है। नेताओं की कथनी व करनी में प्राय: कोई साम्य दिखाई नहीं देता है। चुनाव जीतने के लिए नेताओं द्वारा बड़े-बड़े वादे व घोषणाएँ की जाती हैं किन्तु सत्ता प्राप्ति के बाद बहुत सी घोषणाएँ थोथी साबित होती हैं और भोली भाली जनता स्वयं को ठगा महसूस करती है। समकालीन कवि इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कहता है–"मतदाता के रूप में/ वह तुम्हें समझता है अपना भाग्य विधाता/ बाद में 'मतवाला' हो तोड़ लेता है नाता/ केवल देता है भड़कीले, आश्वासन पर आश्वासन/ कुर्सी पर लगाना चाहता है सदा को वज्रासन।"11 वादों और घोषणाओं के सहारे चुनाव जीतने वाले नेता सत्ता प्राप्ति के पश्चात चाटुकारों से घिरकर उन्हें सत्ता के शिखर पर पहुँचाने वाली जनता को ही आँखें दिखाते हैं। नेताओं के इस प्रकार के व्यवहार से आहत समकालीन कवि उनकी तुलना बकासुर से करते हुए कहता है–"नहीं हैं ये नेता बकासुर खड़े हैं/ समझ मीन जनता को चट से निगलते/ कहीं मुस्कराकर कहीं छवि दिखाकर/ मधुर भाषणों से भ्रमाकर हैं छलते/ खड़े मंच पर सत्य के देवता बन/ दिवास्वप्न नय नीति के हैं दिखाते/ पदासीन हो चाटुकारों से घिरकर/ दु:खी दीन जन को हैं आँखें दिखाते।"12 इसी प्रकार–"हाँ यह सही है कि इन दिनों/ मंत्री जब प्रजा के सामने आता है/ तो पहले से/ कुछ ज्यादा मुस्कराता है/ नए-नए वादे करता है/ और यह सब घास के/ सामने होने की मजबूरी है/ वरना उस भले मानुष को/ यह भी पता नहीं कि विधानसभा भवन/ और अपने निजी बिस्तर के बीच/ कितने जूतों की दूरी है।"13

समकालीन हिन्दी कविता में राजनीति में अवसरवाद पर गहरे व्यंग्य मिलते हैं। राजनीति में किसी भी विषय को महत्त्व देने का आधार केवल जनहित नहीं अपितु अवसर भी होता है। इस अवसर की राजनीति पर व्यंग्य करते हुए समकालीन कवि कहता है–"अवसर देख पहन लिया फिर अवसर देख उतार दिया/ यहाँ मौसमी कोट हो गए यारों अपने रामलला/ पूजा, निष्ठा, ध्यान, धारणा इनका कोई अर्थ नहीं/ लोकतंत्र में वोट हो गए यारों अपने रामलला।"14

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् से ही राजनीति तथा भ्रष्टाचार का गहरा सम्बनध रहा है। इसके लिए नौकरशाही भी एक सहयोगी कारक के रूप में उपलब्ध रही है। जनता के विकास के लिए बनी योजनाएँ निरन्तर भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ती रहीं और आम आदमी की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। जनसाधारण सदैव की भाँति निर्धनता व अशिक्षा के कुचक्र में फँसे रहने के लिए अभिशप्त रहा। भ्रष्टाचार की स्थिति पर व्यंग्य के माध्यम से तीव्र प्रहार समकालीन हिन्दी कविता की अन्यतम विशेषता है–"रीती बाल्टियाँ रखकर/ नल की टोटियाँ उमेठते रह जाते हैं खाली हाथ/ दहकते टीलों पर/ ठोकर खाकर गिरते हैं/ वरुण के प्यासे बेटे/ और कनॉट प्लेस के बीचों बीच/ उछल-उछल पड़ता है/ रोशनी से झिलमिलाता / ठंडी फुहारों वाला फाउंटेन।"15

भ्रष्टाचार का ही एक रूप भाई-भतीजावाद है। भारतीय राजनीति में भाई-भतीजावाद का सदैव से बोलबाला रहा है। इसी के बल पर अयोग्य लोग सभी प्रकार के सुख प्राप्त करते हैं तो दूसरी ओर उन सुखों के वास्तविक पात्र कुंठित होकर भटकते रहते हैं। राजनीतिक पदों से लेकर राजकीय पदों तक में इस स्थिति का अनुभव सहज ही किया जा सकता है। समकालीन हिन्दी कवि ने इस विडम्बना को अपने व्यंग्य का विषय बनाया है–"एक इत्तिफाक है कि श्री जी एक बड़े नेता हैं/ एक इत्तिफाक है कि बंदा उनका भतीजा है/ मगर यह कोई इत्तिफाक नहीं कि बंदा एक बड़ा अफसर है/ यह तो इन दोनों इत्तिफाकों का महज एक हसीन नतीजा है।"16 इसी स्थिति को सुप्रसिद्ध गीतकार गोपाल दास नीरज ने कुछ इस प्रकार शब्दबद्ध किया है–"है आज की योग्यता सिफारिश/ तुम अपनी ये डिग्रियाँ जला दो/ इन कॉलिजों पर अँगार फैंको/ इन सर्टिफिकेटों को जा बहा दो/ न पढ़ने लिखने की है जरूरत/ ना कम्पीटीशन के कुछ माने/ तुम्हें मिलेगी हरेक सर्विस/ किसी मिनिस्टर से खत लिखा दो।"17 कवि दिनकर सोनवलकर इस सर्वसुलभ भाई-भतीजावाद पर आक्षेप करते हुए कहते हैं–"और इस तरह/ पूरा हो रहा है स्वप्न/ स्वराज्य का;/ 'स्व' यानी मैं और मेरा परिवार/ मेरे रिश्तेदार/ और कुछ पूँछ हिलाने वाले/ कुत्ते वफादार।"18

राजनीति एवं अपराध का गठजोड़ राजनीति के नकारात्मक पक्षों में से एक रहा है। एक ओर राजनीति द्वारा अपराध को प्रश्रय दिया जाता है तो साथ ही अपराधी पृष्ठभूमि के बहुत से लोग राजनीति भी करते हैं, चुनाव जीतते हैं तथा उच्च पदों पर आसीन भी होते हैं। समकालीन कविता में राजनीति के अपराधीकरण का भी अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। अपराध को राजनीतिक प्रश्रय के कारण सामान्य जन मौन रहकर सब कुछ सहने को विवश है। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति पर व्यंग्यात्मक आक्षेप करते हुए कवि धूमिल कहते हैं–"अत्याचारों पर दम साध लेना/ यहाँ परिपक्वता का लक्षण है।"19 भेड़िया रूप अपराधी जनता पर शासन करते हैं। मूढ़ों के हाथ में सत्ता है। तथा संत महात्मा किस प्रकार दुर्दशा के शिकार हैं, इसकी आक्रोशमय व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति कवि धूमिल की पंक्तियों में देखी जा सकती है–"इसी सन्नाटे में कैंसर, मेनजाइटिस दल बाँधे खड़े हैं/ सड़कों पर खंजर छुपाए भेड़िए टहल रहे हैं/ ऊँचे मकानों पर उल्लुओं के दल पहरा दे रहे हैं/ इसी सन्नाटे में कवियों और/ कलाकारों के लिए सेनेटोरियम खुल रहे हैं/ सन्तों और महात्माओं के लिए पागलखाने/ और अर्द्ध-विक्षिप्तों के लिए राजगद्दियाँ……../ हाय रे अभूतपूर्व कविता!/ तुझ पर विश्वास भला कौन करेगा।"20

सन 1960 के पश्चात की भारतीय राजनीति कई प्रकार के उतार चढ़ावों की साक्षी रही है। एक ओर जहाँ इसके सकारात्मक पक्ष हैं तो दूसरी और इसमें गहरे तक गिरावट भी स्पष्टत: देखी जा सकती है। समकालीन हिन्दी कवि अपने समय व समाज का सच्चा द्रष्टा है। उसने ह्रास की ओर अग्रसर राजनीति की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को गहरे तक समझा है तथा उनका निष्पक्ष चित्रण भी किया है। यद्यपि इस युग की कविता में राजनीति के नकारात्मक रूप की ही व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति मुख्य रूप से हुई है, किन्तु फिर भी कहीं-कहीं राजनीतिक सिद्धांतों के प्रेरक व शुचिता के पालक राजनीतिज्ञों के प्रति सच्ची सहानुभूति भी इस कविता में खुलकर देखी जा सकती है।

REFERENCES

1. ममता अग्रवाल – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य – डॉ. शेरजंग गर्ग, पृ.सं. 371
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – गर्म हवाएँ, पृ.सं. 30-31
3. विष्णु चन्द्र शर्मा – कविताएँ –1963, पृ.सं. 143
4. राजेन्द्र एस. प्रदीप – चुनाव प्रचार – साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 11 फरवरी 1967, पृ.सं. 14
5. राजकमल चौधरी – मुक्ति प्रसंग, पृ.सं. 09
6. धूमिल – पटकथा – समकालीन कविता की भूमिका – सं. विशम्भर नाथ उपाध्याय पृ.सं. 130
7. धूमिल – पटकथा – समकालीन कविता की भूमिका – सं. विशम्भर नाथ उपाध्याय पृ.सं. 132
8. सुरेश नीरव – ज्ञानवीर – आजकल, सितम्बर 1981, पृ.सं. 18
9. लीलाधर जगूड़ी – आलोचना – सितम्बर 1968, पृ.सं. 08
10. रमेश गौड़ – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य – डॉ. शेरजंग गर्ग, पृ.सं. 400
11. रमानाथ शास्त्री : 'भारतीय जनता' : इन्द्रधनुष अँधेरी रात के, पृ.सं. 29-30
12. इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र – इन्द्रधनुष, पृ.सं. 69

13. धूमिल – पटकथा – समकालीन कविता की भूमिका – सं. विशम्भर नाथ उपाध्याय पृ.सं. 139

14. विभांशु दिव्याल – 'गजल' – हंस, जून 1993, पृ.सं. 53

15. डॉ. मनोहर अभय – एक चेहरा : पच्चीस दरारें, पृ.सं. 28

16. रामानंद दोषी – कादम्बिनी – सितंबर 1970, पृ.सं. 33

17. गोपाल दास नीरज – दर्द दिया है।(काव्य संग्रह) पृ.सं.116

18. दिनकर सोनवलकर – पीढ़ियों का दर्शक, पृ.सं. 07

19. दूधनाथ सिंह – अपनी शताब्दी के नाम, पृ.सं. 74

20. दूधनाथ सिंह – अपनी शताब्दी के नाम, पृ.सं. 77